प्रयाग

द्वितीय संस्करण

मूल्य एक रुपया

सं० '९९,

मुद्रक
कृष्णाराम मेहता,
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

राय बहादुर प० श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी,
एम० ए० (लन्दन)
शिक्षा-प्रसार-अफ़सर, यू० पी०

आदरणीय अग्रज

पण्डित श्री श्रीनारायण जी चतुर्वेदी महोदय

के

कर-कमलों में

साहित्य-स्नेह-स्मृति-रूप

'तुलसीदास'

कवि

परिचय

पद्य मे कहानी कहने की प्रथा प्राचीन काल से प्रचलित है। प्रस्तुत कविता भी एक कथा-वस्तु को लेकर निर्मित हुई है। गोस्वामी तुलसीदास किस प्रकार अपनी स्त्री पर अत्यधिक आसक्त थे, और बाद को उसी के द्वारा उन्हे किस प्रकार राम की भक्ति का निर्देश हुआ, यह कथा जन-साधारण मे प्रचलित है। इसी कथा की नींव पर कवि ने इस लम्बी कविता की रचना की है, कारण यह कि उसने कथा-तत्व मे और बहुत सी बाते देखी हैं जो जन-साधारण की दृष्टि से ओझल रहती हैं। तुलसी का प्रथम अध्ययन, पश्चात् पूर्व संस्कारों का उदय, प्रकृति-दर्शन और जिज्ञासा, नारी से मोह, मानसिक संघर्ष और अंत मे नारी द्वारा ही विजय आदि वे मनोवैज्ञानिक समस्याएँ हैं जिन्हे लेकर कवि ने कथा को विस्तार दिया है। यहाँ रहस्यवाद से सम्बन्ध रखने वाली भावना-प्रणाली विश्लेषण करना कवि का इष्ट रहा है। कथा को प्राधान्य देने वाली कविताएँ हिंदी मे शतशः हैं; मनोविज्ञान को आधार मान पद्य मे लिखी जाने वाली कविताओं मे यह एक ही है।

आलंकारिक रूप में कवि ने पहले मोगलों के आक्रमण का वर्णन किया है और बताया है किस प्रकार हिन्दू शासन-सम्बन्ध

नहीं पराजित हुए वरन् उनकी सभ्यता और संस्कृति को भारी धक्का पहुँचा। हिन्दू-सभ्यता के सूर्य का अस्त होने पर मुस्लिम संस्कृति के चन्द्रमा का उदय हुआ। इस नवीन संस्कृति के शीतल आलोक में तुलसीदास का जन्म होता है। एक दिन वह मित्रों के साथ चित्रकूट घूमने जाते हैं, वहाँ प्रकृति देख उन्हे बोध होता है, किस प्रकार चेतन के स्पर्श न पा सकने से जैसे सब जड़वत् रह गया है। प्रकृति से उन्हे संदेश मिलता है, जड़ से चेतन की ओर बढ़ने का, इस रात्रि से दिन की खोज करने का। जिस माया ने सत्य को छिपा रखा है, उसका उन्हे आभास मिलता है। इतने ही संकेत से तुलसीदास का मन ऊर्ध्वगामी होकर आकाश के स्तर के स्तर पार करने लगा। मन की अत्यंत ऊँची उड़ान से उन्होंने देखा किस प्रकार भारत की सभ्यता एक जाल मे फॅसी हुई है, जैसे सूर्य की आभा को राहु ने ग्रस लिया हो। भारतीय संस्कृति किस प्रकार अधोगति को प्राप्त हुई इसका कवि ने यहाँ मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। इस भारतीय संस्कृति को एक लहर की तरह मुस्लिम सभ्यता आक्रांत किए हुए थी; इसी विदेशी सभ्यता की लहर के ऊपर वह आलोकमय सत्य का लोक है जो इस समय हिन्दुओं की दृष्टि से ढँका हुआ है। बिना इस बीच के सांस्कृतिक अंधकार को पार किए सत्य तक पहुँच नहीं हो सकती।

तुलसीदास के प्राण इस अज्ञान का नाश करने को विकल हो गए किन्तु उसी क्षण वहाँ आकाश में उन्हे अपनी स्त्री के

दर्शन हुए। उसी के मोह में बँध कर उनका जिज्ञासु मन उतर आता है। सारी प्रकृति ही उन्हें अपनी स्त्री के सौंदर्य रँगी जान पड़ती है। अपने मित्रों के साथ वे लौट आते हैं। रास्ते मे इसी मोह की विवेचना करते आते हैं और जैसा स्वाभाविक था वह इस मोह को ही सत्य करके मानते हैं।

इधर रत्नावली का भाई उसे लिवाने आता है और जब तुलसीदास बाजार जाते हैं, वह उनकी स्त्री को लिवा ले जाता है। घर आकर तुलसी ने देखा, वहाँ कोई भी नहीं है। बस घर से निकल पड़े और ससुराल चल दिये। उनकी शृंगार भावनाओ के अनुकूल रास्ते मे प्रकृति भी मोहक सौंदर्य में रँगी हुई जान पड़ती है।

रात्रि में एकांत हुआ और उस समय तुलसीदास ने प्रिया का एक नवीन रूप देखा। समग्र भारत की सभ्यता को पुनर्जीवन देने के लिए ही जैसे विधाता ने उसे तुलसी की स्त्री बनाया था। आवेश में उसके केश खुल गए थे, आँखों से जैसे ज्वाला निकल रही थी, अपनी ही अग्नि में जैसे उसने अपने रूप को भस्म कर दिया था। तुलसी ने उसकी अरूपता देखी और सहम गए; ऐसा सौंदर्य उन्होंने पहले कभी न देखा था। उसके शब्द उनकी अंतरात्मा में पैठ गए और वह चलने को तैयार हो गए। रत्नावली को उस समय बोध हुआ कि यह विछोह सदा के लिए होगा। उसके नेत्रों मे आँसू भर आए, लेकिन तुलसीदास के लिए लौटना असंभव था। वह उसे समझा बुझा कर चल दिए।

जाग्रत यह विजय भारतीय संस्कृति की विजय थी। किस प्रकार तुलसी के संघर्ष का अंत होते ही अज्ञात न जाने कहाँ कहाँ हर्ष छा गया, उस सब उल्लास का वर्णन कविता में ही पढ़ते बनता है। संघर्ष का जैसा ओजपूर्ण चित्रण कवि ने किया है, वैसा ही उसका अंत भी हृदय में न समा सकने वाले भारत किंवा विश्व-व्यापी उल्लास से किया है!

कवि का क्षेत्र नवीन है। रहस्यवाद को कथा रूप में उसने एक नया चित्र खींचा है। मनोवैज्ञानिक तथ्यों का निरूपण उसका ध्येय है; अतः उसे अपनी भाषा बहुत कुछ स्वयं गढ़नी पड़ी है। किस सफलता से उसने छोटी छोटी बातों से लेकर बड़े बड़े मानसिक घात प्रतिघातों को अपनी वाणी द्वारा सजीव कर दिया है, यह सहृदय पाठक स्वयं समझेंगे। निराला जी अपनी कविता में ओजगुण के लिए प्रसिद्ध हैं; उसका यहाँ पूर्ण विकास हुआ है। रहस्यवाद को उनके पुरुषत्व ने उसके अंतर्द्वंद्व के साथ कथा रूप में यहाँ चित्रित किया है। भाषा के साथ छंद का ओज देखते ही बन पड़ता है। हमें पूर्ण आशा है, हिंदी संसार इस कविता की मौलिकता और उसकी महत्ता की कद्र करेगा।

शान्ति कुटीर
काशी
फाल्गुन, '९५

कृष्णदास

तुलसीदास

(१)

भारत के नभ का प्रभापूर्य

शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य

अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ्मंडल ;

उर के आसन पर शिरस्त्राण

शासन करते हैं मुसलमान ;

है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल ।

(२)

शत-शत अब्दों का सांध्य काल
यह आकुंचित-भ्रू कुटिल-भाल
छाया अंबर पर जलद-जाल ज्यों दुस्तर;

आया पहले पंजाब-प्रांत,
कोशल-विहार तदनंत क्रांत,
क्रमशः प्रदेश सब हुए भ्रांत, घिर-घिरकर।

(३)

मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद-नद पठान
हैं बहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर;

छाया ऊपर घन-अंधकार
टूटता वज्र दह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय-धार, ध्वनि हर-हर।

(४)

रिपु के समक्ष जो था प्रचंड
आतप ज्यों तम पर करोद्दंड,
निश्चल अब वही बुँदेलखंड, आभा गत,

नि:शेष सुरभि, कुरबक-समान
संलग्न वृंत पर, चिन्त्य प्राण,
बीता उत्सव ज्यों, चिह्न म्लान; छाया श्लथ।

(५)

वीरों का गढ़, वह कालिंजर,
सिंहों के लिये आज पिंजर;
नर हैं भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते;

पीकर ज्यों प्राणों का आसव
देखा असुरों ने दैहिक दव,
बंधन में फँस आत्मा-बांधव दुख पाते।

(६)

लड़-लड़, जो रण-बाँकुरे, समर,
हो शयित देश की पृथ्वी पर,
अक्षर, निर्जर, दुर्धर्ष, अमर, जगतारण

भारत के उर के राजपूत,
उड़ गए आज वे देवदूत,
जो रहे शेष, नृप-वेश सूत वंदीगण।

(७)

यों, मोगल-पद-तल प्रथम तूर्ण
संबद्ध देश-बल चूर्ण-चूर्ण;
इसलाम-कलाओं से प्रपूर्ण जन जनपद;

संचित जीवन की, क्षिप्रधार,
इसलाम-सागराभिमुख ऽपार,
बहतीं नदियाँ, नद, जन-जन हार वशंवद।

(८)

अब, धौत धरा, खिल गया गगन,
उर-उर को मधुर, तापप्रशमन
बहती समीर, चिर-आलिंगन ज्यों उन्मन,

झरते हैं शशधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों के चुंबन, संजीवन।

(९)

भूला दुख, अब सुख-स्वरित जाल
फैला—यह केवल-कल्प काल
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता;

प्राणों की छवि मृदु-मंद-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित-छंद,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता।

(१०)

सोचता कहाँ रे, किधर कूल
बहता तरंग का प्रमुद फूल ?
यों इस प्रवाह मे देश भूल खो बहता ;

'छल-छल-छल' कहता यद्यपि जल ,
वह मंत्र-मुग्ध सुनता 'कल-कल' ;
निष्क्रिय , शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता ।

(११)

पड़ते हैं जो दिल्ली-पथ पर
यमुना के तट के श्रेष्ठ नगर,
वे हैं समृद्धि की दूर-प्रसर माया में ;

यह एक उन्हीं में राजापुर ,
है पूर्ण, कुशल, व्यवसाय-प्रचुर ,
ज्योतिश्चुंबिनी कलश-मधु-उर छाया में ।

(१२)

युवकों में प्रमुख रत्न-चेतन,
समधीत - शास्त्र - काव्यालोचन
जो, तुलसीदास, वहीं ब्राह्मण-कुल-दीपक;

आयत - दृग, पुष्ट-देह, गत - भय,
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा का मंद-स्मित परिचय, संस्मारक;

(१३)

नीली उस यमुना के तट पर
राजापुर का नागरिक मुखर
क्रीड़ित वय - विद्याध्ययनांतर है संस्थित;

प्रियजन को जीवन चारु, चपल
जल की शोभा का-सा उत्पल
सौरभोत्कलित अंबर-तल, स्थल-स्थल, दिक-दिक।

(१४)

एक दिन, सखागण संग, पास,
चल चित्रकूटगिरि, सहोच्छ्वास,
देखा पावन वन, नव प्रकाश मन आया;

वह भाषा छिपती छवि सुंदर
कुछ खुलती आभा में रँग कर,
वह भाव कुरल-कुहरे-सा भर कर भाया।

(१५)

केवल विस्मित मन, चित्य नयन;
परिचित कुछ, भूला ज्यों प्रियजन
ज्यों दूर दृष्टि को धूमिल-तन तट-रेखा,

हो मध्य तरंगाकुल सागर,
निःशब्द स्वप्नसंस्कारागार,
जल में अस्फुट छवि छायाधर, यों देखा।

(१६)

तरु-तरु, वीरुध्-वीरुध्, तृण-तृण
जाने क्या हँसते मसृण-मसृण,
जैसे प्राणों से हुए उऋण, कुछ लख कर;

भर लेने को उर में, अथाह,
बाँहों में फैलाया उछाह;
गिनते थे दिन, अब सफल-चाह पल रख कर।

(१७)

कहता प्रति जड़, "जंगम-जीवन!
भूले थे अब तक बंधु, प्रमन?
यह हताश्वास मन भार श्वास भर वहता;

तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धूलि-धूसरित छवि;
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता।

(१८)

"हँसती आँखों की ज्वाला चल,
पाषाण-खंड रहता जल-जल,
ऋतु सभी प्रबलतर बदल-बदल कर आते;

वर्षा में पंक-प्रवाहित सरि,
है शीर्ण-काय-कारण हिम अरि;
केवल दुख दे कर उदरंभरि जन जाते।

(१९)

"फिर असुरों से होती क्षण-क्षण
स्मृति की पृथ्वी यह, दलित-चरण;
वे सुप्त भाव, गुप्ताभूषण अब हैं सब;

इस जग के मग के मुक्त-प्राण!
गाओ विहंग! सद्ध्वनित गान,
त्यागोज्जीवित, वह ऊर्ध्व ध्यान, धारा-स्तव।

"लो चढ़ा तार लो चढ़ा तार,
पाषाण-खंड ये, करो हार,
दे स्पर्श अहल्योद्धार-सार उस जग का;

अन्यथा यहाँ क्या ? अंधकार,
बंधुर पथ, पंकिल सरि, कगार,
झरने, झाड़ी, कंटक; विहार पशु-खग का !

(२१)

"अब स्मर के शर-केशर से झर
रँगती रज-रज पृथ्वी, अंबर;
छाया उससे प्रतिमानस-सर शोभाकर;

छिप रहे उसी से वे प्रियतम
छवि के निश्छल देवता परम;
जागरणोपम यह सुप्ति-विरम भ्रम, भ्रम भर।"

(२२)

वह कर समीर ज्यों पुष्पाकुल
वन को कर जाती है व्याकुल,
हो गया चित्त कवि का त्यों तुल कर उन्मन;

वह उस शाखा का वन-विहंग
उड़ गया मुक्त नभ निस्तरंग
छोड़ता रंग पर रंग रंग पर जीवन।

(२३)

दूर, दूरतर, दूरतम, शेष,
कर रहा पार मन नभोदेश,
सजता सुवेश, फिर-फिर सुवेश जीवन पर,

छोड़ता रंग, फिर फिर सँवार
उड़ती तरंग ऊपर अपार
संध्या-ज्योतिः ज्यों सुविस्तार अंबर तर।

(२४)

उस मानस ऊर्ध्व देश मे भी,
ज्यों राहु-ग्रस्त आभा रवि की,
देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरती-सी

भारत का सम्यक् देशकाल;
खिचता जैसे तम-शेष जाल,
खींचती, वृहत् से अंतराल करती-सी।

(२५)

बँध भिन्न-भिन्न भावो के दल
क्षुद्र से क्षुद्रतर, हुए विकल,
पूजा मे भी प्रतिरोध-अनल है जलता,

हो रहा भस्म अपना जीवन,
चेतना-हीन फिर भी चेतन;
अपने ही मन को यों प्रति मन है छलता।

(२६)

इसने ही जैसे बार-बार
दूसरी शक्ति की की पुकार
साकार हुआ ज्यों निराकार, जीवन में;

यह उसी शक्ति से है वलयित
चित देश-काल का सम्यक् जित,
ऋतु का प्रभाव जैसे संचित तरु-तन में।

(२७)

विधि की इच्छा सर्वत्र अटल;
यह देश प्रथम ही था हत-बल,
वे टूट चुके थे ठाट सकल वर्णों के;

तृष्णोद्धत, स्पर्धागत, सगर्व
क्षत्रिय रक्षा से रहित सर्व,
द्विज चाटुकार, हत इतर वर्ग पर्णों के।

(२८)

चलते-फिरते, पर निःसहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय;
आशा—केवल जीवनोपाय उर-उर में;

रण के अश्वों से शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
शूद्रगण क्षुद्र-जीवन-संबल, पुर-पुर में।

(२९)

वे शेष-श्वास, पशु, मूक-भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास;
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विजगण के

होना ही उनका धर्म परम,
वे वर्णाधम, रे द्विज उत्तम,
वे चरण चरण बस, वर्णाश्रम-रक्षण के।

(३०)

रक्खा उन पर गुरु-भार, विषम
जो पहला पद, अब मद-विष-सम,
द्विज लोगों पर इसलाम-धूम वह छाया,

जो देश-काल को आवृत कर
फैली है सूक्ष्म मनोनभ पर,
देखी कवि ने, समझा अब वर, क्या माया ।

(३१)

इस छाया के भीतर हैं सब,
है बँधा हुआ सारा कलरव,
भूले सब इस तम का आसव पी-पी कर ।

इसके भीतर रह देश-काल
हो सकेगा न रे मुक्त-भाल,
पहले का-सा उन्नत विशाल ज्योतिःसर ।

(३२)

दोनों की भी दुर्बल पुकार
कर सकती नहीं कदापि पार
पार्थिवैश्वर्य का अंधकार पीड़ाकर,

जब तक कांक्षाओं के प्रहार
अपने साधन को वार-बार
होंगे भारत पर इस प्रकार तृष्णापर।

(३३)

सोचा कवि ने, मानस-तरंग,
यह भारत-संस्कृति पर सभंग।
फैली जो, लेती संग-संग जन-गण को;

इस अनिल-वाह के पार प्रखर
किरणों का वह ज्योतिर्मय वर,
रविकुल-जीवन-चुंबनकर मानस-धन जो।

(३४)

है वही मुक्ति का सत्य रूप,
यह कूप कूप भव अंध कूप,
वह रंक, यहाँ जो हुआ भूप, निश्चय रे।

चाहिए उसे और भी और,
फिर साधारण को कहाँ ठौर ?
जीवन के, जग के, यही तौर हैं जय के।

(३५)

करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर-द्वार
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय

लड़ना विरोध से द्वंद्व समर,
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर
जाना, भिन्न भी देह, निज घर निःसंशय।

(३६)

कल्मषोत्सार कवि के दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध द्वार का छायान्तम तरने को

करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को।

(३७)

उस क्षण, उस छाया के ऊपर,
नभ-तम की-सी तारिका सुघर,
आ पड़ी, दृष्टि में, जीवन पर, सुंदरतम

प्रेयसी, प्राणसंगिनी, नाम
शुभ रत्नावली सरोज-दाम
वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम।

(३८)

'जाते हो कहाँ ?' सुले तिर्यक्
दृग, पहनाकर ज्योतिर्मय स्रक्
प्रियतम को ज्यों, बोले सम्यक् शासन से ;

फिर लिए मूँद वे पल पक्ष्मल
इंदीवर के-से कोश विमल ;
फिर हुई अदृश्य शक्ति पुष्कल उस तन से ।

(३९)

उस ऊँचे नभ का, गुँजनपर,
मंजुल जीवन का मन-मधुकर,
खुलती उस दृग-छवि में बँध कर, सौरभ को

बैठा ही था सुख से क्षण-भर,
मुँद गए पलों के दल मृदुतर,
रह गया उसी उर के भीतर, अक्षम हो ।

(४०)

उसके अदृश्य होते ही रे,
उतरा वह मन धीरे-धीरे,
केशर-रज-कण अब हैं हीरे पर्वतचय ;

यह वही प्रकृति, पर रूप अन्य ;
जगमग-जगमग सब वेश वन्य,
सुरभित दिशि-दिशि, कवि हुआ धन्य, मायाशय ।

(४१)

यह श्री पावन, गृहणी उदार,
गिरि-वर उरोज, सरि पयोधार,
कर वन-तरु ; फैला फल निहारती देती,

सब जीवों पर है एक दृष्टि,
तृण-तृण पर उसकी सुधा-वृष्टि ;
प्रेयसी, बदलती वसन सृष्टि नव लेती ।

(४२)

ये जिस कर के रे झंकृत स्वर
गूँजते हुए इतने सुखकर,
खुलते, खोलते प्राण के स्तर भर जाते;

व्याकुल आलिंगन को, दुस्तर,
रागिनी की लहर, गिरि-वन-सर
तरती, जो ध्वनित, भाव सुंदर कहलाते!

(४३)

यों धीरे-धीरे, उतर-उतर;
आया मन निज पहली स्थिति पर,
खोले दृग, वैसी ही प्रांतर की रेखा;

विश्राम के लिये मित्र-प्रवर
बैठे थे ज्यों, बैठे पथ पर;
वह खड़ा हुआ, त्यों ही रह कर यह देखा!

(४४)

फिर पंचतीर्थ को चढ़े सकल
गिरिमाला पर, है प्राण चपल
संदर्शन को, आतुर-पद चल कर पहुँचे ।

फिर कोटितीर्थ देवांगनादि
लख सार्थक-श्रम हो विगत-व्याधि
नेम-पद चले, कंटक, उपाधि भी, न कुँचे ।

(४५)

आए हनुमद्धारा द्रुततर,
झरता झरना वीर पर प्रखर,
लख कर कवि रहा भाव में भर कर क्षण-भर,

फिर उतरे गिरि, चल किया पार
पथ पयस्विनी सरि मृदुल-धार,
स्नानांत, भजन, भोजन, विहार गिरि-पद पर ।

(४६)

कामदगिरि का कर परिक्रमण

आए जानकी - कुंड सब जन ;

फिर स्फटिकशिला, अनसूया-वन सरिन्उद्गम,

फिर भरतकूप, रह इस प्रकार,

कुछ दिन सब जन कर वन-विहार

लौटे निज निज गृह हृदय धार छवि निरुपम ।

(४७)

प्रेयसी के अलक नील, व्योम ;

दृग-पल, कलंक; मुख मंजु, सोम ;

निःसृत प्रकाश जो, तरुण क्षोम प्रिय तन पर ;

पुलकित प्रतिपल मानस - चकोर

देखता भूल दिक् उसी ओर ;

कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन-भर ।

(४८)

जिस शुचि प्रकाश का सौरजगत्
रुचि-रुचि में खुला, असत् भी, सत्,
वह बँधा हुआ है एक महत् परिचय से ;

अविनश्वर वही ज्ञान भीतर,
बाहर भ्रम, भ्रमरों को, भास्वर,
वह रत्नावली-सूत्रधर पर आशय से ।

(४९)

देखता, नवल चल दीप युगल
नयनों के, आभा के कोमल ;
प्रेयसी के, प्रणय के, निस्तल विभ्रम के,

गृह की सीमा के स्वच्छभास
भीतर के, बाहर के प्रकाश,
जीवन के, भावों के विलास, शम-दम के ।

(५०)

पर वही द्वंद्व के भी कारण,
बंध की शृंखला के धारण,
निर्वाण के पथिक के वारण, करुणामय;

वे पलकों के उस पार, अर्थ
हो सका न, वे ऐसे समर्थ,
सारा विवाद हो गया व्यर्थ, जीवन-लय।

(५१)

उस प्रियावरण प्रकाश में बँध,
सोचता, "सहज पड़ते पग सध,
शोभा को लिए ऊर्ध्व औ' अध घर बाहर;

यह विश्व, सूर्य, तारक-मंडल,
दिन, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष चपल;
बँध गति-प्रकाश में बुद्ध सकल पूर्वापर।

(५२)

"बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति ?
गति-हीन जीव को कहाँ सुरति ?
रति-रहित कहाँ सुख ? केवल क्षति—केवल क्षति,

यह क्रम-विनाश; इससे चल कर
आता सत्वर मन निम्न उतर;
छूटता अंत में चेतन स्तर, जाती मति।

(५३)

"देखो प्रसून को, वह उन्मुख !
रँग - रेणु - गंध भर व्याकुल - सुख,
देखता ज्योतिमुख; आया दुख - पीड़ा सह।

चटका कलि का अवरोध सदल,
वह शोधशक्ति, जो गंधोच्छल,
खुल पड़ती पल-प्रकाश को, चल परिचय वह।

(५४)

"जिस तरह गंध से बँधा फूल,
फैलता दूर तक भी, समूल;
अप्रतिम प्रिया से, त्यों दुकूल-प्रतिमा में

मैं बँधा एक शुचि आलिंगन,
आकृति मे निराकार, चुंबन;
युक्त भी मुक्त यों आजीवन, लघिमा मे।"

(५५)

सोचता कौन प्रतिहत-चेतन
वे नहीं प्रिया के नयन, नयन;
वह केवल वहाँ मीन-केतन, युवती में;

अपने वश मे कर पुरुष-देश
है उड़ा रहा ध्वज मुक्तकेश;
तरुणी-तनु आलंबन-विशेष, पृथ्वी में?

(५६)

वह ऐसी जो अनुकूल युक्ति,
जीव के भाव की नहीं मुक्ति;
वह एक मुक्ति, ज्यों मिली शुक्ति से मुक्ता,

जो ज्ञानदीप्ति, वह दूर, अजर,
विश्व के प्राण के भी ऊपर;
माया वह, जो जीव से सुघर संयुक्ता।

(५७)

मृत्तिका एक, कर सार-ग्रहण
खुलते रहते बहुवर्ण सुमन;
त्यों रत्नावली-हार में बँध मन चमका,

पा कर नयनों की ज्योति प्रखर,
ज्यों रविकर से श्यामल जलधर,
बहु वर्णों के भावों से भर कर दमका।

(५८)

वह रत्नावली, नाम-शोभित

पति-रति में प्रतनु, अतः लोभित ;

अपरिचित-पुण्य अक्षय शोभित धन कोई ;

प्रियकरालंब को सत्य-यष्टि ;

प्रतिमा में श्रद्धा की समष्टि ;

मायायन में प्रिय-शयन व्यष्टि भर सोई ;

(५९)

लखती ऊषारुण, मौन, राग,

सोते पति से वह रही जाग ;

प्रेम के फाग में आग त्याग की तरुणा ;

प्रिय के जड़ युग कूलों को भर

बहती ज्यों स्वर्गंगा सस्वर ;

नश्वरता पर आलोक-सुघर दृक्-करुणा !

(६०)

धीरे-धीरे वह हुआ पार
तारा-द्युति से बँध अंधकार,
एक दिन विदा को बंधु द्वार पर आया,

लख रत्नावली खुली सहास,
अवरोध-रहित बढ़, गई पास;
बोला भाई, हँसती उदास तू छाया

(६१)

"हो गई रतन, कितनी दुर्बल,
चिंता में बहन, गई तू गल?
माँ, बापूजी, भाभियाँ सकल पड़ोस की

हैं विकल देखने को सत्वर,
सहेलियाँ सब, ताने देकर,
कहती हैं, बेचा वर के कर, आ न सकी!

(६२)

"तुमसे पीछे भेजी जा कर
आईं वे कई बार नैहर;
पर तुम्हें भेजते क्यों श्रीवरजी डरते?

हम कई बार आ-आ कर घर
लौटे पा कर झूठे उत्तर;
क्यों बहन, नहीं तू सम, उन पर बल करते?

(६३)

"आँसुओं भरी माँ दुख के स्वर
बोली, रतन से कहो जा कर,
क्या नहीं मोह कुछ माता पर अब तुमको?

जामाताजी वाली ममता
माँ से तो पाती उत्तमता।
बोले बापू, योगी रमता मैं अब तो

(६४)

"कुछ ही दिन को हूँ कुल-द्रुम;
छू लूँ पद फिर, कह देना तुम।
बोली भाभी, लाना कुंकुम - शोभा को,

फिर किया अनावश्यक प्रलाप,
जिसमे जैसी स्नेह की छाप।
पर अकथनीय, करुणा-विलाप जो माँ को।

(६५)

"हम, बिना तुम्हारे आए घर,
गाँव की दृष्टि से गए उतर;
क्यो बहन, ब्याह हो जाने पर, घर पहला

केवल कहने को है नैहर?
दे सकता नही स्नेह - आदर?
पूजे पद, हम इसलिये अपर?" उर दहला

(६६)

उस प्रतिमा का, आया तब खुल
मर्यादागर्भित धर्म विपुल,
धुल अश्रु-धार से हुई अतुल छवि पावन;

वह घेर-घेर निस्सीम गगन
उमड़े भावों के घन पर घन,
फैला, उक सघन स्नेह-उपवन, यह सावन।

(६७)

बोली वह, मृदु-गंभीर-घोष,
"मैं साथ तुम्हारे, करो तोष।"
जिस पृथ्वी से निकली सदोष वह सीता,

अंक में उसी के आज लीन
निज मर्यादा पर समासीन,
दे गई सुहृद् को स्नेह-दीप्त गत गीता।

(६८)

बोला भाई "तो चलो अभी,
अन्यथा, न होंगे सफल कभी
हम, उनके आ जाने पर, जी यह कहता।

जब लौटें वह, हम करें पार
राजापुर के ये मार्ग, द्वार।"
चल दी प्रतिमा। घर अंधकार अब बहता।

(६९)

लेते सौदा जब खड़े हाट,
तुलसी के मन आया उचाट;
सोचा, अबके किस घाट उतारें इनको,

जब देखो, तब द्वार पर खड़े,
उधार लाए हम, चले बड़े!
दे दिया पान तो अड़े पड़े अब किनको?

(७०)

सामग्री ले लौटे जब घर,
देखा, नीलम-सोपानों पर
नभ के, चढ़ती आभा सुंदर पग धर-धर;

श्वेत, श्याम, रक्त, पराग-पीत,
अपने सुख से ज्यों सुमन भीत
गाती यमुना नृत्यपर, गीत कल-कल स्वर।

(७१)

देखा, वह नहीं प्रिया, जीवन;
नत-नयन भवन, विपरण्ण आँगन;
आवरण शून्य वे बिना वरण-मधुरा के

अपहृत-श्री, सुख-स्नेह का सद्म,
निःसुरभि, हंत, हेमंत-पद्म!
नैतिक-नीरस, निष्प्रीति, छद्म ज्यों, पाते।

(७२)

यह नहीं आज गृह, छायान्तर
गीति से प्रिया की मुखर, मधुर
गति-नृत्य, तालशिंजित-नूपुर, चरणारुण ;

व्यंजित नयनों का भाव सघन
भर रंजित जो करता क्षण-क्षण ;
कहता कोई मन से, उन्मन, सुन रे सुन !

(७३)

वह आज हो गई दूर तान,
इसलिये मधुर वह और गान,
सुनने को व्याकुल हुए प्राण प्रियतम के ;

छूटा जग का व्यवहार-ज्ञान,
पग उठे उसी मग को अजान,
कुल-मान-ध्यान श्लथ स्नेह-दान-सक्षम से ।

(७४)

मग में पिक-कुहरित डाल-डाल,
हैं हरित विटप सब सुमन-माल,
हिलतीं लतिकाएँ ताल-ताल पर सस्मित;

पड़ता उन पर ज्योतिःप्रपात,
हैं चमक रहे सब कनक-गात;
बहती मधु-धीर समीर ज्ञात, आलिंगित।

(७५)

धूसरित बाल-दल, पुण्य-रेणु,
लख चारण-चारण-चपल-धेनु,
आ गई याद उस मधुर-वेणु-वादन की;

वह यमुना-तट, वह वृंदावन,
चपलानंदित वह सघन गगन,
गोपी-जन-यौवन-मोहन-तन वह वन-श्री।

(७६)

सुनते सुख की वंशी के सुर ,
पहुँचे रत्नधर रमा के पुर ;
लख सादर, उठी समाज श्वशुर-परिजन की ;

बैठाला दे कर मान-पान ,
कुछ जन बतलाए कान-कान ;
सुन बोली भाभी, यह पहचान रतन की !

(७७)

जल गए व्यंग्य से सकल अंग ,
चमकी चल-दृग ज्वाला-तरंग ,
पर रही मौन धर अप्रसंग वह बाला ;

पति की इस मति-गति से मर कर ,
उर की उर में ज्यों, ताप-हर ,
रह गई सुरभि की म्लान-अधर वर-माला !

(७८)

बोली मन में हो कर अक्षम,
रक्खो, मर्यादा पुरुषोत्तम !
लाज का आज भूषण, अक्लम, नारी का ;

खींचता छोर, यह कौन और
पैठा, उनमें जो अधम चोर ?
खुलता अब अंचल, नाथ, पोर साड़ी का !

(७९)

कुछ काल रहा यों स्तब्ध भवन,
ज्यों आँधी के उठने का क्षण ;
प्रिय श्रीवरजी को जिवाँ शयन करने को

ले चली साथ भावज हरती
निज प्रियालाप से वश करती,
वह मधु-शीकर निर्झर झरती झरने को ।

(८०)

जेंए फिर चल गृह के सब जन,
फिर लौटे निज-निज कक्ष - शयन ;
प्रिय-नयनों में बँध प्रिया-नयन चयनोत्कल

पलकों से स्फारित, स्फुरित - राग
सुनहला भरे पहला सुहाग,
रंग-रंग से रँगा रे रहे जाग स्वप्नोत्पल ।

(८१)

कवि-रुचि में घिर छलकता रुचिर,
जो, न था भाव वह छवि का स्थिर
बहती उलटी ही आज रुधिर-धारा वह ,

लख - लख प्रियतम - मुख पूर्ण-इंदु
लहराया जो उर - मधुर सिंधु,
विपरीत ज्वार, जल-बिंदु-बिंदु द्वारा वह ।

(८२)

अस्तु रे, विवश, मारुत - प्रेरित,
पर्वत - समीप आ कर ज्यों स्थित
घन-नीलालका दामिनी जित ललना वह ;

उन्मुक्त - गुच्छ चक्रांक - पुच्छ ,
लख, नर्तित कवि-शिखि-मन समुच्च
वह जीवन की समझा न तुच्छ छलना वह ।

(८३)

बिखरी छूटीं शफरी - अलकें,
निष्पात नयन - नीरज - पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता ;

निःसंबल केवल ध्यान - मग्न ,
जागी योगिनी अरूप - लग्न ,
वह खड़ी शीर्ण प्रिय-भाव-मग्न निरुपमिता ।

(८४)

कुछ समय अनंतर, स्थित रह कर,
स्वर्गीयाभा वह स्वरित प्रखर
स्वर में झर-झर जीवन भर कर ज्यों बोली ;

अचपल ध्वनि की चमकी चपला,
बल की महिमा बोली अबला,
जागी जल पर कमला, अमला मति डोली—

(८५)

"धिक ! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए !

हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़, चाम !
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए !"

(८६)

जागा, जागा संस्कार प्रबल,
रे गया काम तत्क्षण वह जल,
देखा, वामा वह न थी, अनल-प्रतिमा वह ;

इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान,
हो गया भस्म वह प्रथम भान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह ।

(८७)

देखा, शारदा नील - वसना
हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि - रशना,
जीवन - समीर-शुचि-निःश्वसना, वरदात्री,

वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताक्षर - निर्झर,
यह विश्व हंस, है चरण सुघर जिस पर श्री ।

(८८)

दृष्टि से भारती से बँध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर;
केवल अंबर केवल अंबर फिर देखा;

धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि - ताराहर,
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर, क्षर रेखा।

(८९)

चमकी तब तक तारा नवीन,
द्युति नील-नील, जिसमें विलीन
हो गई भारती, रूप - क्षीण महिमा अब;

आभा भी क्रमशः हुई मंद,
निस्तब्ध व्योम गति-रहित छंद;
आनंद रहा, मिटे गए द्वंद्व, बंधन सब।

(९०)

थे मुँदे नयन, ज्ञानोन्मीलित,
कलि मे सौरभ ज्यों, चित मे स्थित ;
अपनी असीमता मे अवसित प्राणाशय ;

जिस कलिका मे कवि रहा बंद,
वह आज उसी मे खुली मंद,
भारती - रूप में सुरभि-छंद निष्प्रश्रय ।

(९१)

जब आया फिर देहात्मबोध,
बाहर चलने का हुआ शोध,
रह निर्विरोध, गति हुई रोध - प्रतिकूला,

खोलती मृदुल दल बंद सकल
गुदगुदा विपुल धारा अविचल
वह चली सुरभि की ज्यों उत्कल, निःशूला

(९२)

वाणी वहती लहरें कलकल,
जागे भावाकुल शब्दोच्छल,
गूँजा जग का कानन-मंडल, पर्वत-तल;

सूना उर ऋषियों का ऊना
सुनता स्वर, हो हर्षित, दूना,
आसुर भावों से जो भूना, था निश्चल।

(९३)

"जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल;

बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन;
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमावल।

(९४)

"होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर;
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवनभर;

भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल;
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया-कर।

(९५)

"हो रहे आज जो खिन्न-खिन्न
छुट-छुटकर दल से भिन्न-भिन्न
यह अकल-कला, गह सकल छिन्न, जोड़ेगी,

रवि-कर ज्यों विंदु-विंदु जीवन
संचित कर करता है वर्षण,
लहरा भव-पादप, मर्षण-मन मोड़ेगी।

(९६)

"देश-काल के शर से बिंध कर
यह जागा कवि अशेष-छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएँगी;

निश्चेतन, निज तन मिला विकल,
छलका शत-शत कल्मष के छल
बहतीं जो, वे रागिनी सकल सोएँगी।

(९७)

"तम के अमार्ज्य रे तार-तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश-धार;
जग-वीणा के स्वर के बहार रे, जागो;

इस कर अपने कारुणिक प्राण
कर लो समक्ष देदीप्यमान
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर माँगो।"

(९८)

क्या हुआ कहाँ, कुछ नहीं सुना,
कवि ने निज मन भाव में गुना,
साधना जगी केवल अधुना प्राणों की,

देखा सामने, मूर्ति छल-छल
नयनों मे छलक रही अचपल,
उपमिता न हुई समुच्च सकल तानों की।

(९९)

जगासग जीवन का अंत्य भाष
"जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का

मेरा उससे गृह के भीतर;
देखूँगा नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं, जो वर जीवन-भर वहने का।"

चल मंदचरण आए बाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा।

संकुचित खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा।

(१)

मुसलमानों के आक्रमण से हिन्दू संस्कृति का जो ह्रास हो गया है, उसी का यहाँ वर्णन है।

प्रभापूर्ण प्रकाश भरने वाला।

शीतलच्छाय—शीतल छायावाला। सूर्य यहाँ संस्कृति का है, अतः शीतल छाया देनेवाला है।

सांस्कृतिक सूर्य संस्कृति का सूर्य, ऊपर जिसके विशेषण दिए गए हैं।

अस्तमित विदेशियों के आक्रमण के कारण वह सूर्य आज अस्त हो गया।

तमस्तूर्य दिङ्मंडल सूर्य अस्त होने से जैसे दिशाएँ अंधकार की तुरही बजा रही हों।

उरके ..शिरस्त्राण शिर की रक्षा करने के लिए मुसलमान राजा हैं पर वे छाती पर बैठ कर शासन करते हैं, भारतीयों को दास बनाए हैं।

ऊर्मिल जल भारतीय जीवन का जल देखने को लहरों से चंचल है,

निश्चलत्प्राण पर शतदल परन्तु कमल जो जल के जीवन का प्रतीक है वह प्राणहीन, निःस्पंद हो रहा है।

भारतीय संस्कृति की संध्या से इस कविता का आरंभ होता है।

(२)

उसी सांस्कृतिक संध्या का और विस्तार से वर्णन है।

अब्दों वर्षों।

आकुंचित भ्रू भौं टेढी किए।

क्रांत पराजित।

भ्रांत पथ-भ्रष्ट।

वर्षों की यह संध्या भौंह टेढी किए, मस्तक पर बल डाले आकाश में बादलों की तरह घिरी हैं; उसी की छाया से देश के सभी प्रांत एक के बाद एक पराजित हो गए हैं।

(३)

संध्या की भयंकरता वर्षा के रूपक द्वारा चित्रित की गई है।

मोगल.. बान मोगलों की सेना बादल है।

दर्पित .पठान मस्त चलते हुए पठान जल से भरे नद हैं।

दहदुर्निवार जो वज्र रोका नहीं जा सकता और गिरने पर जीवन को भस्म करने वाला है।

प्लावन की प्रलय धार वर्षा का यह जल जीवन नहीं, प्रत्युत मनुष्यों का नाश करने वाला है।

ध्वनि हर हर उसकी ध्वनि में हर हर सुनाई देता है, वह प्राणों का हरण करने वाला है।

(४)

आतप सूर्य।

करोद्दंड किरणों में उद्दंड।

निश्चल गतिहीन, प्राणहीन। जैसे जल पर कमल था।

आभागत—प्रकाशहीन।

नि.शेष . समान गंधहीन केतकी के फूल के समान।

सलग्न . प्राण- वृंत पर फूल लगा तो है परन्तु प्राणों मे उत्साह नहीं, वहाँ चिंता ने वास कर रखा है।

बीता श्लथ—जैसे कहीं उत्सव हो गया हो और अब वहाँ केवल बीते उत्सव के चिह्न मात्र रह गए हों, जैसे छाया ढीली पड़ी हो।

भाव शत्रु पर बुंदेले ऐसे आक्रमण करते थे जैसे अधकार पर सूर्य किंतु अब वे निस्तेज हो गए हैं।

(५)

कालिंजर का गढ़ किसी समय वीरों का दुर्ग था, आज उनके लिए बंदी-गृह है।

पिंजर पिंजरा, बदीगृह।

किन्नर बाहर नपुसक उत्सव मना रहे हैं, अपनी दासता पर मग्न होकर।

पीकर......पाते प्राण शक्ति की मदिरा पीकर जैसे असुरों ने दैहिक यातना भोगी। आध्यात्मिक शक्तियाँ जैसे माया के बधनो मे पड़ कर दुख झेलती हैं (उसी प्रकार भारतीय वीर इस समय यत्रणा पा रहे हैं)।

(६)

ऊपर नर और किन्नर का अंतर बताया जा चुका है, यहाँ राजपूत और राजा के वेश मे सूतों का अतर दिखाया गया है। जो सच्चे राजपूत थे, वे तो देश के लिए लड़ कर स्वर्ग चले गए, जो बचे हैं वे सूत, बदी मात्र हैं।

शयित समरभूमि में सोकर।

अक्षर अमर।

निर्जर जराहीन, देवता।

दुर्धर्ष भयंकर युद्ध करने वाले।

जगतारण संसार की रक्षा करने वाले।

राजपूत वे देशमाता के सच्चे पूत थे।

(७)

इस प्रकार इस्लाम ने भारत पर विजय पाई और देश का जीवन उसी विदेशी संस्कृति के अनुरूप ढलने लगा।

तूर्ण शीघ्र।

सबद्ध सुगठित।

जन-जनपद व्यक्ति और समाज सभी यवन सभ्यता से प्रेरित हैं।

संचित एकत्र की हुई।

जीवन...धार भारतीय जीवन की तीव्र धारा।

इस्लाम . पार इस्लाम संस्कृति के सागर की ओर, अपार ! (नदियाँ आदि)।

वहती . वशंवद जीवन के नदी-नद उसी सागर की ओर वहते हैं। प्रत्येक जन हार कर विजेताओं का वशवर्ती हो उन्हीं की सी कहने लगा है।

(८)

इस्लाम सभ्यता के मोह चित्रण।

धौत धरा आक्रमण की प्रथम वर्षा के बाद जैसे शरद् आई हो।

तापप्रशमन ताप को शांत करने वाली (हवा)।

चिर...उन्मन जैसे लोगों के आलिंगन के लिए उन्मन हो।

शशधर भारतीय संस्कृति के सूर्य के अस्त होने पर मुस्लिम सभ्यता के चंद्र का उदय हुआ है। उसका अमृत प्रेयसी पृथ्वी के अधरों को सींचता है !

निःस्वन चुपचाप।

संजीवन झरते अमृत के चुंबन पृथ्वी को जीवन देते हैं, अर्थात् सब लोग भोग विलास में लिप्त हैं।

(९)

विलासपूर्ण जीवन का चित्रण।

सुखे-स्वरित जाल सुख के स्वरों से बुना जाल।

केवल-कल्प काल केवल कल्पना में सुख देने वाला, वास्तविक आनंद से हीन।

कामिनी . चलता समय की गति सुंदरियों के इशारों पर निर्भर है।

मृदु-मद-स्पद प्राणों के स्पंदन भी अत्यंत मधुर और मंद हो गए हैं।

लघु...छद जीवन सजा-बजा, सधे ताल पर चल रहा है; मुक्त प्रवाह उसमें नहीं है।

होगा...मलता शायद ही कोई ऐसे में विलास से विमुख स्वतंत्रता की साधना में मग्न होगा।

(१०)

जैसे पानी में बहता फूल अपनी गति-विधि भूल जाता है वैसे ही देश इस सभ्यता के प्रवाह में दिशा ज्ञान खो बैठा है। किनारे के पत्थर की भाँति वह कृत्रिम जीवन की छलना को नहीं समझ पाता।

प्रमुद प्रसन्न।

छल छल छल जल 'छल छल' शब्द कर सचेत करता है।

परन्तु

कल-कल वह मन्त्र-मुग्ध कल कल, सुन्दर, सुन्दर; ही सुनता है।

निष्क्रिय अकर्मण्य।

शोभाप्रिय मिथ्या सौंदर्य का उपासक।

कूलोपल—धारा के किनारे का पत्थर।

(११)

मुस्लिम संस्कृति का प्रसार भूमिका रूप में वर्णित हुआ : अब तुलसीदास के जन्म आदि की ओर आते हैं।

दूरप्रसर दूर तक फैली हुई गाथा में (अर्थात् राजापुर उस समय के समृद्धिशाली नगरों में से है)।

व्यवसाय-प्रचुर व्यवसाय के कारण उसकी समृद्धि है।

ज्योति ..छाया में उस छाया में छाया जो ज्योति को चूमती है, जिसके हृदय में मधु से भरे कलश हैं, यानी गुम्बददार धनधान्य पूरित मकानों की छाँह में राजापुर के लोग रहते हैं।

(१२)

तुलसीदास की शारीरिक गठन, उनके विद्याध्ययन आदि का परिचय दिया जाता है।

रत्नचेतन रत्न के समान अपनी चेतना से शोभित।

समधीत ..लोचन शास्त्र, काव्य, और आलोचनाएँ जिसने पढ़ी हैं।

आयतदृग विशाल नेत्र।

अपने प्रकाश में निःसंशय अपने ज्ञान के बल पर वह निःशङ्क है।

प्रतिभा...संस्मारक प्रतिभा का सुचारु परिचय देने वाला और उसे दूसरों के लिए स्मरण करने के योग्य बनाने वाला है।

(१३)

मुखर वाक्पटु ।

क्रीडितवय ..सुस्थित क्रीड़ा और विद्या में उचित समय लगा कर अब जीवन में प्रतिष्ठित हैं ।

प्रियजन...चारु अपने प्रियजनों को जिसका सुन्दर जीवन है ।

चपल उत्पल जैसे चञ्चल कमल जल की शोभा को बढ़ाता है ।

सौरभोत्कलित . दिक उसकी सुगन्ध से आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ सभी प्रसन्न हैं ।

तुलसीदास की विद्या, चरित्र आदि पर सभी लोग मुग्ध हैं ।

(१४)

एक दिन वह मित्रों के साथ चित्रकूट गए और वहाँ पर प्रकृति की शोभा देखी ।

सहोच्छ्वास उत्साह से भरे हुए ।

नवप्रकाश प्रकृति के दर्शन से मन में नई भावनाएँ जाग्रत हुईं ।

वह भाषा...रँगकर प्रकृति की भाषा स्पष्ट न होकर कुछ छिपती सी अपनी ही आभा में रँगी हुई थी ।

वह भाव ..माया प्रकृति-दर्शन से उत्पन्न भाव कुहरे की कुण्डली सा उनके मन को लगा अर्थात् आधा वह स्पष्ट था आधा अस्पष्ट परतु अत्यत आकर्षक ।

(१५)

प्रकृति की छवि देख कर उनके पुराने विस्मृत सस्कार जागने लगे ।

केवल...मन उनके मन में केवल विस्मय का भाव था ।

चित्य नयन नेत्रों मे किसी भूली बात को याद करने की हल्की चिंता सी थी।

परिचित . प्रियजन वस्तुएँ कुछ परिचित जान पड़ती थीं, कुछ भूली सी, जैसे कोई प्रियजन बहुत दिनों के बाद देखने पर सहसा पहचान में नहीं आता।

ज्यों दूर . रेखा समुद्र से देखने वाले को जैसे पार की धुंधली रेखा दिखाई देती है।

हो मध्य . यों देखा बीच में, तरंगों से आकुल परंतु निःशब्द, स्वप्न संस्कारों का समुद्र जैसे लहराता हो। जल में छवि की अस्फुट छाया मात्र पड़ती सी जान पड़ी, वास्तविक सौंदर्य इन संस्कारों के परे था।

(१६)

प्रकृति में व्याप्त आनंद का भान कवि को हुआ।

वीरुध्-वीरुध् लताएँ।

मसृण कोमल।

जैसे.. लख कर जैसे वे लता-गुल्म कुछ देख कर अपने प्राणों से उऋण हो गये, किसी तरह का सांसारिक-ऋण-बोध उन्हे न रह गया।

भर.. उछाह कवि को अपनी बाहों मे भर लेने को जैसे प्रकृति ने अपनी बाँहे फैला दी हों।

गिनते . रखकर मिलने के लिए दिन गिने जा रहे थे; अब चाह पूरी हुई है। आँखों का पलक भाँजना भी बंद हो गया।

(१७)

प्रकृति दर्शन से उत्पन्न भावों को शब्दों का रूप दिया गया है।

प्रकृति अपनी वेदना कह कवि को सत्ता की खोज के लिए प्रेरित करती है।

कहता प्रति जड़ प्रमन—जड़ पदार्थ चेतन तुलसीदास से कहते हैं कि उन्हे अभी तक प्रकृति के विषय मे भ्रम था।

प्रमन प्रसन्न।

यह.. वहता उन पदार्थों का मन भार-स्वरूप श्वास को निराश सा वहन करता है।

धूलिधूसरित छवि प्रकृति की छवि जो इस समय धूलि से रँगी निष्प्राण हो रही है।

जड़ रवि प्रकृति का सब जीवन चला गया है। जड़ सूर्य उसे जलाता है।

(१८)

हनती.. जल सूर्य की गर्मी मे पत्थर जल कर रह जाता है।

ऋतु ..आते प्रबल ऋतुएँ प्रकृति पर आतंक जमाती आती हैं।

वर्षा मे...अरि—वर्षा में कीचड़ पानी से नदी भरी थी, शरद् में वही क्षीण हो जाती है और उसकी क्षीणता का कारण (हिमअरि) सूर्य है।

केवल ..जाते इससे निष्कर्ष यह निकला कि उदर भरने वाले लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि करके दूसरो को दुख देकर चले जाते हैं।

(प्रकृति का रूपक दूसरी ओर उस काल के समाज पर भी लागू है)।

(१९)

फिर . चरण स्मृति की, पुराने सस्कारों की (मनुष्य और प्रकृति दोनों के सस्कारों की) भूमि असुरों द्वारा दलित होती है।

वे सुप्त भाव ..सब पुराने जीवित संस्कार इस समय छिपे आभूषण से लुप्त हो गए हैं।

इस जग . गान है मुक्तप्राण, संसार की मुक्ति के सुंदर गीत गाओ (प्रकृति की दासता ऊपर दिखाई ही जा चुकी है।)

त्यागोज्जीवित . धारास्तव वह गान त्याग के जीवन की भावना से अनुप्राणित हो : ऊर्ध्व, सांसारिकता से परे सत्य का ध्यान उसमें समाहित हो ; और धारा के समान उस स्तव, वंदना, का प्रवाह हो। अर्थात् वह गान मनुष्यों को नव जीवन देने वाला हो।

(२०)

उसी नवीन गान के लिए और भी प्रेरणा है।

तार वीणा के तार। चढ़ाने से भाव है कि गान में जीवन की पूर्ण स्फूर्ति हो।

पापाणखंड बिना ज्ञान के प्रकृति जड़ है। वही ज्ञान का स्पर्श पाने से हार स्वरूप हो सकती है जैसे श्रीराम के स्पर्श से अहल्या पत्थर से नारी होगई थी।

अन्यथा बिना ज्ञान के स्पर्श के, प्रकृति अपने बाहरी दिखाई देने वाले रूप में जड़ है।

वंधुर दुर्गम ; ऊँचे नीचे।

पंकिल कीचड़ से भरी (नदी)।

(२१)

मुसलमान सभ्यता में पड़े हुए भारतीयों की दुर्दशा की ओर प्रकृति भी इंगित करती है। पार्थिव ऐश्वर्य के मोह में सत्य की ज्योति ढक गई है।

अब स्मर.. अवर कामदेव के शर केशर के हैं, उनसे झरती रज पृथ्वी-आकाश को रँग रही है। अर्थात् चारों ओर माया का साम्राज्य है।

जागरणोपम भर यह माया जागरण-सी लगती है परन्तु है वास्तव में सुप्ति का विराम, जिसमें मनुष्य अपनी चेतना खो बैठता है। यह भ्रम सभी को भुलावे में डाले हुए है।

(२२)

फूलों की सुगंध से लदी वायु जैसे वन को व्याकुल कर देती है, वैसे ही तुलसीदास का भी चित्त प्रकृति का यह संदेश सुन कर उन्मन हो गया।

उस शाखा का वन-विहग तुलसीदास का मन जो अपनी पार्थिवता में चित्रकूट में था, ध्यान में लीन होकर ऊपर को उठने लगा।

मुक्त नभ निस्तरंग तरंगहीन अचंचल आकाश तुलसीदास का मनोदेश ही है।

छोड़ता . जीवन जिन रँगों को उनका मन छोड़ रहा है, वे संस्कारों के रँग हैं। अगोचर सत्य उनसे परे है और उसी की खोज में कवि का मन ऊपर उठ रहा है।

(२३)

ऊर्ध्वगामी मन की क्रिया का सविस्तर वर्णन है। वह ऊपर ही ऊपर उठता जाता है और सजे हुए संस्कारों की सतहों को पार करता जाता है। जैसे वह एक रँग छोड़ता है, वैसे ही दूसरी संस्कारों की तरंग ऊपर उठती हैं जैसे संध्या-समय सूर्य की आभा आकाश में ऊपर उठती है। नभोदेश कह कर स्पष्ट कर दिया गया है कि जिस प्रदेश को तुलसीदास का मन पार कर रहा है, वह उन्हीं के भीतर है।

पहले मन को विहंग के रूप में उड़ाकर यहाँ आकाश की संध्या ज्योति में घिरवाने में सार्थक व्यंजना है।

(२४)

मन की इस उडान से तुलसीदास को तत्कालीन भारतीय सभ्यता का पूरा आभास मिल गया।

मनास ऊर्ध्व देश अनेक संस्कारों की तरंगें पार करने पर जिस सतह पर उनका मन था।

भरती ..काल जिस छाया के समान छवि को कवि ने देखा वह भारत के देश-काल को पूर्णतः अपने में भरती सी जान पड़ती थी।

खिंचता ..जाल जैसे जाल अंधकार-शेष रह गया हो, इस प्रकार वह देशकाल दिखाई दिया।

खींचती . करती सी वृहत् से अंतराल करके, जुदा करके, वह देश काल की छवि लोगों को खींच रही थी। भारत की सभ्यता बँधी हुई सी तुलसीदास को दिखाई दी।

(२५)

भारतीय सभ्यता का जो चित्र तुलसीदास के सामने आया, उसी का विस्तृत परिचय आगे दिया गया है।

बँध...विकल छोटे छोटे भावों के दल बँध कर कवि को क्षुद्र से क्षुद्रतर मालूम हुए।

जिन भावों से यह संस्कृति बनी थी, वे अत्यंत तुच्छ मालूम हुए।

पूजा ..जलता पूजा जो मुक्ति के लिए होनी चाहिए, पार्थिव इच्छाओं की पूर्ति के लिए की जाती है। इसलिए उसमें माया का प्रतिरोध अग्नि के समान भीतर ही भीतर जलता है। वह

मनुष्य को मुक्ति की ओर न ले जाकर उसके पतन का कारण बनती है।

हो रहा...जीवन अनल का जलना ऊपर बताया गया है। उसी से जीवन भस्म हो रहा है।

चेतना...चेतन जब पूजा का यह रूप है तब माया में भूले हुए मनुष्य को चेतन कैसे कहा जाय ?

अपने.. छलता परतु मनुष्य तो अपने को चेतन समझता ही है। यही उसकी छलना है और उस समय की भारतीय सभ्यता का यही रूप है। सत्य से दूर माया के वह निकट है।

(२६)

इसने—मन ने, जिसका ऊपर जिक्र हो चुका है।

दूसरी शक्ति इस्लाम की शक्ति।

साकार...जीवन मे—जैसे निराकार जीवन मे साकार होता है, वैसे ही वह शक्ति भारतीय जीवन में व्याप्त हो गई (आगे जैसे कहा गया है, ऋतु का प्रभाव वृक्ष में सचित रहता है)।

यह...जित—विजित देशकाल का चित्त (मन) उसी शक्ति से घिरा हुआ है।

ऋतु . तनमे वह शक्ति भारतीय जीवन में ऐसे व्याप्त है जैसे तरु मे ऋतु का प्रभाव सचित हो।

(२७)

वे वर्णों के भारतीय समाज का आदि सगठन-क्रम नष्ट हो चुका था, इसीलिए इस नई शक्ति को उस पर विजय पाने में सरलता हुई। चारों वर्ण की मर्यादा भग हो चुकी थी।

तृष्णोद्धत सगर्व क्षत्रिय समाज की रक्षा करने में असमर्थ

थे। वे उद्धत थे तो तृष्णा से, सच्चे पराक्रम और धर्म से नहीं; गर्व की मात्रा उनमें विशेष थी।

हत...पर्णों के पर्ण-कुटी के रहने वाले साधारण लोग कुचले हुए थे।

(२८)

निम्न वर्णों का वर्णन है।

आशा...उर में प्रत्येक हृदय में पेट भरने की कामना ही है और इसी आशा से वे जीते हैं।

क्षुद्र-जीवन-संबल जिन्दगी पार करने के थोड़े ही सामान शूद्रों के पास थे।

(२९)

शेषश्वास वे, उन, शूद्रों में साँस लेने भर को जीवन है।

मूक-भाप अपनी वेदना मुंह से कह भी नहीं सकते।

चरण...रक्षण के शूद्र समाज-पुरुष के चरण मात्र ही रह गये हैं। उनमें मस्तिष्क वाली कोई बात नहीं।

(३०)

गुरुभार ब्राह्मणों ने सेवा का भारी भार शूद्रों पर रखा।

विषम सम सेवा के लिए जो पहले शूद्रों को पद मिला वह अब सम्मानहीन हो उनके लिए विष-तुल्य हो गया।

द्विज लोगों . छाया ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों पर ही इस्लाम की शक्ति वाली वह छाया फैली अपना काम कर रही थी।

वर, क्या माया उस छाया को देख कवि समझा देश के लिए क्या वर था, क्या माया (अभिशाप) थी।

(३१)

इस इस्लाम की सभ्यता के भीतर भारतीय जीवन बँधा हुआ है।

कलरव प्राणों की क्रिया।

तमका आसव माया का मद।

ज्योतिःसर ज्योति में चलने वाला।

(३२)

दीनों...पीड़ाकर यह दासता दीनों की पुकार से छिन्न नहीं हो सकती। भौतिक ऐश्वर्य का अंधकार दीनों से कहीं अधिक सबल है।

जब...तृष्णापर जब तक मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए भारत पर आक्रमण करते रहेंगे (तब तक दीनों की मुक्ति असंभव है)।

(३३)

कवि ने सोचा कि मुक्ति इस इस्लामी संस्कृति के परे है।

मानस...सभंग इस्लाम की छाया जो भारतीय संस्कृति को ढके हुए है।

अनिल...घर यह छाया वास्तविक नहीं, हवा की तरह बहने वाली, अदृश्य है। इसके ऊपर किरणों का घर है अर्थात् सत्य का आलोक इस छाया से परे है।

रविकुल जो वह सत्य का घर सूर्य की किरणों के संस्पर्श से जीवित है। वही मानस का वास्तविक धन भी है। रामचरित मानस और उसके नायक रामचन्द्र की ओर भी इंगित है कि सूर्यवंश की आत्मा वही किरणों का घर है।

(३४)

है वही ..कूप मुक्ति वहीं है, यह संसार तो दासता के लिए कुँआ सा है।

वह रंक ..रे जो यहाँ राजा है वह छल प्रपंच के ही कारण; ज्ञान की दृष्टि से वह रंक मात्र है।

यहीं...जय के संसार में बड़े बनने के यही तरीके हैं। दूसरों का धन अपहरण किए बिना आदमी बड़ा बन नहीं सकता, इसीलिए वह वास्तव में तुच्छ है।

(३५)

तिमिर माया का अंधकार।

मिहिरद्वार सूर्य की आभा से प्रकाशित सत्य का द्वार।

जीवन के प्रखर ज्वार में इस अज्ञान के जीवन से परे सत्य की खोज के भरे जीवन में।

भिन्न भी देह देह के नष्ट होने पर भी।

निज घर निःसंशय निःशंक होकर (या निश्चित रूप से) उसी सत्य के घर पहुँचना है।

(३६)

तुलसीदास के प्राणों में उस छाया से युद्ध करने की जो चेष्टा हुई उसी का वर्णन है।

कल्मषोत्सार पाप के नाश करने वाले।

दुर्दम अप्रतिहत।

चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम चेतना की लहरों के प्रथम प्राण। जो शक्ति क्रियाशील हुई वह उनकी चेतना में प्राथमिक थी, अभी उनका पूर्ण मानव युद्धोन्मुख न हुआ था।

रुद्ध द्वार ज्ञान का द्वार जो अभी बंद है।

ज्ञानोद्धत ज्ञान से उद्धत; ज्ञान होना चाहिए, इस आवश्यकता का ज्ञान ही उनकी प्रेरणा है।

उमड़े चेतनोर्मियों के प्राण उमड़े।

भारत का भ्रम उनके प्राणों की क्रिया उनका अपना अज्ञान ही नहीं, सारे भारत का अज्ञान दूर करने के लिए।

(३७)

इतना सब हो चुकने पर, जब सिद्धि निकट जान पड़ती थी, उनकी स्त्री की मूर्ति उनके मार्ग में विघ्न बन कर उपस्थित हुई। अभी मोह से निकलने में उन्हें देर थी। यहाँ नारी-प्रकृति को सिद्ध किया है कि इस्लाम की शक्ति से भौतिक,संसार की समस्त शक्ति से वह ऊपर है।

नभ.. सुघर—जैसे आकाश मे तारिका चमकती है, वैसे ही उस ऊँची मन की सतह पर उन्हें रत्नावली की मुख-छवि दिखाई दी।

सरोज-दाम कमल की सी कांतिवाली।

वाम सरितोपम उनके मार्ग में वह वाम हुई जैसे किसी राही की राह में नदी पड जावे।

(३८)

उस छवि ने शीघ्र कवि को अपने भीतर मूँद लिया और उनका उत्थान-क्रम बंद हो गया।

तुले तिर्यक् दृग उसकी चढी तिरछी आँखे।

ज्योतिर्मय स्रक् आखों ने अपनी ज्योति से जैसे प्रिय को ज्योति की माला पहना दी हो।

सम्यक् शासन से आँखों ने प्रिय पर शासन करते हुए कहा।
पक्ष्मल बड़ी बरोनियों वाले।
इंदीवर. विमल नील कमल के सुंदर कोश के समान।
पुष्कल वह श्रेष्ठ शक्ति (अवश्य हो गई)

(३९)

भौंरे की तरह तुलसीदास का मन रत्नावली की छवि पर क्षण भर बैठा ही था कि उस छवि-कुसुम ने अपने दल बंद कर लिए और वह उसी के भीतर बंद होकर रह गया। उनका मन नारी के रूप पर मुग्ध हो लक्ष्य तक न जा सका।

(४०)

रत्नावली के अदृश्य होते ही उनका मन धीरे धीरे नीचे उतर आया। अब प्रकृति की शोभा कुछ और ही जान पड़ी, उसका दाह और दुःख उन्हें भूल गया।

केशर चय केशर की रज से पर्वतों के समूह हीरे-से मालूम देने लगे।

मायाशय माया से अभिभूत।

(४१)

श्री पावन प्रकृति की पवित्र छवि।

बदलती. लेती प्रकृति का नई नई चीज़ों की सृष्टि करना मानों प्रेयसी का वस्त्र बदलना है।

तुलसीदास को प्रकृति में अपनी स्त्री की ही छवि दिखाई दी।

(४२)

जिसके कर स्वर प्रकृति के स्वर उसी नारी के हाथों से झंकृत स्वर है।

प्राण . जाते प्राणों की सभी तहों को भर देते हैं।

रागिनी...तरती उसी नारी के सौंदर्य की रागिनी पहाड़, वन और सरोवरों को पार करती है।

(४३)

वैसी ..रेखा अपनी पहली दशा पर उतर आने पर सभी वस्तुओं का रूप भी पहले जैसा हो गया। (प्रान्तर वन)।

(४४)

सदर्शन को पचतीर्थ दर्शन के लिए।

विगत व्याधि कुचे दर्शन आदि से प्रसन्न हो लौटे तो मार्ग की बाधाएँ भी भूल गए, पैरों में काँटे भी न लगे।

कटक, उपाधि भी विघ्न, उपद्रव होते हुए भी काटें।

(४५)

वीर पर हनुमान जी के पास।

पथ . पयस्विनी उनकी राह में पयस्विनी नदी पडती थी।

गिरिपद पर्वत के नीचे।

(४६)

चित्रकूट मे जहाँ जहाँ वे ओर गए, वहाँ वहाँ के नाम दिए गए हैं।

(४७)

वहाँ से लौटने पर तुलसीदास उसी प्रिया की छवि के ध्यान मे मग्न हैं।

प्रेयसी...तन पर प्रेयसी का मुख चद्रमा है, उसका कलक, उसकी आँखें, आकाश उसकी अलके हैं और उस चंद्रमुख से प्रकाश निकलता है? वह कवि के शरीर पर सुंदर रेशम की तरह पडा हुआ है।

मानस-चकोर उनका मन चकोर की तरह उसी चन्द्रमुख की ओर देखता है।

जीवन-भर उनके जीवन का पोषण करने वाला।

(४८))

तुलसीदास रत्नावली को ही समग्र सृष्टि का रहस्य मानते हैं।

सौरजगत् . सत् अनेक सौंदर्यों में प्रकट सौरजगत् असत् होते हुए भी सत लगता है।

वह बँधा...परिचय से कारण कि वह महान परिचय से बँधा है (यह परिचय सौंदर्य का है)

हरती- मन हरती।

वह...झरने को निर्झर के समान वह तुलसीदास पर अपने स्नेह की वर्षा करती थी।

अविनश्वर . भास्वर भ्रम में पड़े लोगों को उसका वाह्य रूप ही, जो नश्वर है, दिखाई देता है; उसके भीतर अमर ज्ञान है।

वह रत्नावली ..से रत्नावली इस जगत् की सूत्रधर है परतु रहस्य से, अपने वाह्य रूप से नहीं वरन् उस सौंदर्य का प्रतीक होकर जो ससार की एकता का कारण है।

(४९)

चल दीप नयनों के आँखे दो सुदर दीपों सी लगती है।

निस्तल विभ्रम के अतहीन विलास के।

स्वच्छभास स्वच्छ प्रकाशवाले।

भीतर . प्रकाश घर और वाहर ससार मे प्रकाश भरने वाले हैं ; तुलसीदास का घर और वाहर का ज्ञान नारी के प्रति मोह मे ही सीमित है।

जीवन के ..शमदम के वे नेत्र जीवन के नेत्र हैं (जीवन के प्रदर्शक हैं); उनमें भावों का विलास है और वे शमदम की शिक्षा देने वाले भी हैं।

तपस्या और सिद्धि तुलसीदास को उसकी आँखों मे ही दिखाई देती थीं।

(५०)

द्वन्द्व वे नेत्र सांसारिक संघर्ष के भी कारण हैं।

बंध ..धारण -बन्धन की जंज़ीर भी वे पकड़े हैं।

निर्वाण . करुणामय करुणा से भरे वे नेत्र निर्वाण के पथ के पथिक को भ्रष्ट करने वाले हैं।

वे.. समर्थ नेत्र पलकों के पर्दे के उस पार हैं, इसलिये वे ऐसे समर्थ हैं कि उनका मतलब कोई अब तक नहीं लगा सका।

सारा जीवन-क्षय आँखों पर हुआ सारा वाद-विवाद व्यर्थ हो गया है जीवन नष्ट हो गया है।

(५१)

प्रिया के मोह में पड़े हुए कवि के विचार दिए जाते हैं।

प्रियावरण-प्रकाश प्रिया के आवरण के प्रकाश में, वह प्रिया का वास्तविक प्रकाश नहीं है, केवल उसका मोह है।

सहज . सध उसके प्रेम मे वह अपना रास्ता ठीक पहचानता है।

शोभा...बाहर ऊपर नीचे घर बाहर की सभी वस्तुएँ उसी शोभा से बँधी हैं।

यह विधि चपल विश्व, सूर्य, ऋतु आदि सब उसी सौंदर्य में बँधे हैं।

बँध.. पूर्वापर उसी छवि की गति के प्रकाश मे सभी आगे पीछे की वस्तुएँ बँधी जाग्रत हैं। यद्यपि सारा संसार उस शोभा में बँधा है फिर भी वह ज्ञानवान है।

(५२)

तुलसीदास इस बंधन को अपना मन समझाने को मुक्ति सिद्ध करते हैं।

क्रम-विनाश यदि बंधन न हो तो क्रमशः मनुष्य विनाश के निकट पहुँच जायगा।

छूटता...मति इस प्रकार अंत मे चेतन स्तर छूट जाता है और मनुष्य की मति जाती रहती है। (तुलसीदास के साथ इसके विपरीत बातें घटी हैं परंतु वे उसका उल्टा अर्थ कर समर्थन कर रहे हैं)।

(५३)

ऊपर के तर्क के लिए एक उदाहरण देते हैं।

उन्मुख ऊपर को उठता हुआ।

ज्योति मुख जिसके मुख पर ज्योति पड़ती हो।

चटका ..सदल कलि के दलों में बँधा हुआ फूल अपने बंधन को तोड़ कर आगे बढ़ता है।

शोधशक्ति सत्य की खोज करने वाली फूल की शक्ति।

गंधोच्छ्ल गंध से छलकता।

पल-प्रकाश को पुष्प की शक्ति देशकाल के ज्ञान से हीन काल के प्रकाश में खुल पड़ती है।

चल परिचय चलता हुआ परिचय ; सुगन्ध से जैसे परिचय चल है।

(५४)

जिस समूल गंध से बँधा हुआ फूल अपने उसी बंधन गंध के कारण दूर दूर तक फैला रहता है (यह बंधन की महिमा है)।

अप्रतिम प्रिया से . चुंबन—प्रिया से वह बँधे हुए हैं फिर भी प्रिया गंध की तरह अमूर्त है, देखने को आकृति है परन्तु दोनो के संसर्ग से उत्पन्न चुंबन निराकार है।

मुक्त . लघिमा में इस प्रकार प्रिया से युक्त भी वह मुक्त है, बंधन की लघिमा के कारण।

(५५)

प्रतिहत-चेतन बेहोश।

वे . नयन कौन मनुष्य सोचता है कि वे प्रिया के नयन वास्तविक ज्ञान के नयन नहीं हैं।

वह . युवती में युवती में वह केवल मछली की ध्वजा वाला काम है। (आँखे मछली हैं और बाल पताका हैं)।

अपने . मुक्तकेश पुरुपदेश अपने वश मे करके युवती रूपी दण्ड में ध्वजा (उसके केश) उड़ा रहा है।

तरुणी . पृथ्वी मे युवती का तन कामदेव के लिए विशेष आलम्बन है।

(५६)

जीव...मुक्ति तुलसीदास के अपनी इच्छाओं के अनुकूल तर्क जीव की मुक्ति के लिए नहीं है।

भुक्ति केवल भोग के लिए वे तर्क हैं।

शुक्ति से मुक्ता शुक्ति से मिली जैसे मुक्ता मुक्त नहीं होतीं।

माया . संयुक्ता जो जीव से मिली है वह माया है, ज्ञान प्राणशक्ति के भी ऊपर है।

(५७)

मृत्तिका.. चमका- मिट्टी से अनेक रँगों के फूल निकलते हैं, वैसे ही रत्नावली के मोह से तुलसीदास में नव नव भाव जन्म लेते हैं।

पाकर . दमका सूर्य किरणों से जैसे बादल की कांति बढ़ती है, वैसे ही रत्नावली के नयनों की ज्योति से तुलसीदास का मन अनेक रंगीन भावनाओं से भर कर चमक उठा।

(५८)

नाम-शोभन सुन्दर नाम वाली।

पति-रति में प्रतनु पति को प्रसन्न करने में कोमल और तन्वंगी।

अपरिचित.. कोई उसका पुण्य लोगो में अज्ञात है; उसका धन जो आगे तुलसीदास की सहायता करने वाला है, अक्षय है।

क्षोभन—क्षोभ उत्पन्न करने वाला।

प्रिय . यष्टि प्रिय को सन्मार्ग पर लाने के लिए यष्टि।

प्रतिमा.. समष्टि मूर्ति में भी वह श्रद्धा की समष्टि थी, श्रद्धा जो कवि को मुक्ति की ओर ले जाने वाली थी।

मायावरन माया के वश में।

प्रियशयन व्याप्ति भर छोड़ -प्रिय के शयन की व्याप्ति (व्यक्ति) जो भर कर छोड़ थी।

(५९)

ऊषारुण ऊषा के समान रंगीन।

गगन न पारस्परिक मोह का तमाशा देख रही थी।

प्रिय.. सत्वर प्रिय रूपी नद के दोनों जड़ किनारों को भर स्वर्ग की गंगा के समान सत्वर वहती थी।

नश्वरता...करुणा संसार की नश्वरता पर वह आँखों की प्रकाशयुता करुणा थी। तुलसीदास को माया से उवारने के लिए वही एक आशा थी।

(६०)

धीरे...अंधकार रत्नावली की तारा सी ज्योति से वह अंधकार धीरे धीरे कुछ काल वाद पार हुआ, अब तुलसीदास के दिन फिरने का समय आया।

अवरोध रहित बिना किसी हिचक के।

हँसती ..छाया छाया सी ;उदास तू हँसती है परन्तु अपनी ग्लानि छिपा नहीं सकती।

(६१)

सत्वर शीघ्र।

(६२)

क्यों वहन न वल करते उन पर वल दिखाते हुए क्या तू उनकी बरावर नहीं हो सकती ?

(६३)

जामाता.. उत्तमता माँ खुद जामाता जी वाली ममता को वढ़ा देती हैं लड़की को पति का प्यार सिखाती हैं।
(उलाहने के रूप में कहा गया है)।

(६४)

कूल-द्रुम नदी के किनारे के वृक्ष के समान, आज रहे, कल न रहे।

कुंकुम-शोभा -कुंकुम की तरह जिसकी शोभा वढ़ी हुई हो।

(६५)

अपर दूसरे हो गए।

डर दहला रत्नावली का हृदय काँप उठा।

(६६)

मर्यादागमित मर्यादा से बँधा (धर्म प्रकट हुआ)।

अतुल अनुपम सौंदर्य वाली।

गगन उसका हृदय।

भावों के घन पर घन भावों के बादल।

स्नेह-उपवन प्रिय के स्नेह रूपी उपवन को उसके सावन ने, भावों के बादलों ने घेर लिया।

(६७)

मृदुगम्भीर घोष—सुन्दर गंभीर स्वर में बोली।

तोष संतोष करो।

जिन पृथ्वी ..उमासीन पृथ्वी ने सीता संतोष निकली थीं, परन्तु अपनी मर्यादा की रक्षा करती उसी में समा गई। वैसे ही रत्नावली भी अपने धर्म की रक्षा करने वाली थी।

दे गई गीता वह पति के हाथ जैसे चुपचाप स्नेह से मलिन हुई प्रेम की पुरानी गीता दे गई।

(६८)

घर ..बहता घर में, उस प्रकाश-प्रतिमा के चले जाने से अन्धकार छा गया।

(६९)

उधार . चले बड़े बड़े आये कहाँ के लिवाने वाले, मानो हम कहीं से उन्हें उधार लाये हों।

दे किनको एक वार कन्यादान करके अब किस लिए अड़े हैं।

(७०)

नीलम सोपानो पर आकाश की नीलम की बनी सीढ़ियों पर।

आभा संध्या की आभा उन सीढ़ियों पर पैर धरते जैसे चढ रही हो।

(नारी के मोह मे, प्रकृति मे भी, उसी की प्रतिच्छाया दिखाई देती है)।

पराग-पीत अपने पराग से पीले लगने वाले।

अपने भीत फूल अपने सुखाधिक्य से जैसे डर रहे हों।

नृत्यपर नाचती हुई।

(७१)

वह . जीवन उनका जीवन, उनकी प्रिया घर मे नहीं है।

नत . आँगन घर जैसे आँखें नीची किए है और आँगन दुखी सा मालूम होता है।

आवरण आच्छादन, वस्त्र आदि।

शून्य वे सूने लगते थे।

अपहृत-श्री जिसकी शोभा चली गई हो।

सुख-स्नेह का सद्म सुख-स्नेह का घर।

नि सुरभि पद्म--हेमत ऋतु के पाले से मारे हुए गधहीन कमल के समान।

नैतिक पात नीति वाले छद्म जैसे प्रेम नही पाते, वैसे ही वह घर भी नीरस हो रहा था।

वरणमधुरा के रंगों से जो मधुर है, उस नारी के बिना (रत्नावली के रंगीन स्नेह के विना घर की सभी वस्तुएँ सूनी लगती हैं)।

(७२)

छाया-उर स्नेह की छाया सी रत्नावली जिस घर में रहती थी, वह घर नहीं रहा।

गीत ..मधुर प्रिया के गीत से प्रतिध्वनित।

गति...चरणारुण प्रिया की गति से ही जहा नृत्य होता था, बजते नूपुर ताल देते थे, गृह पैरों की ललाई से जैसे लाल हो रहा था।

व्यजित ..क्षण—नयनों से सघन स्नेह वाला जहाँ भाव व्यजित होता था और प्रिय को प्रतिक्षण रंजित करता था।

कहता . सुन कोई, ऐ उचटे हुए, सुन तू सुन। मन से कहता था।

(७३)

वह ..प्रियतम के गीत दूर जाने से और प्रिय हो गया, अतः तुलसीदास प्रिया से मिलने के लिए और भी व्याकुल हुए।

व्यवहार-ज्ञान साधारण व्यवहार की बातें भी याद न रहीं।

कुलमान-ध्यान श्लथ कुल के मान के ध्यान से हीन (उनके पग)।

स्नेहदान-सक्षम से स्नेह दान करने में समर्थ है जो उससे कुल और मान को तोड कर पैर उठे।

(७४)

राह में प्रकृति आनन्द में डूबी दिखाई देती है।

पिक-कुहरित वृक्षों की डालियों पर कोयलें बोलती हैं।

सुमन-माल   वृक्षों पर फूल माला के समान पड़े हुए हैं।

ज्योतिः प्रपात   सूर्य की किरण उनपर पड़ती है।

कनकगात   सोने की सी देह लिए।

मधुधीर   फूलों का मधुपान करने से गभीर-गति वाली।

ज्ञात   उसका स्नेह दूसरों पर प्रकट है।

आलिंगित   फूल, लता आदि द्वारा आलिंगन की जाती हुई।

(७५)

धूसरित बालदल   चरवाहे बालक धूल से भरे हैं।

पुण्यरेणु   उनपर चढी धूल भी पवित्र दिखाई देती है।

चारणवारण-चपलधेनु   चराये और हाँके जाने से चपल गायें।

आगई ..वादन की   कृष्ण के वंसी वजाने की याद आ गई।

चपलानंदित . गगन   उस आकाश की याद आगई जिसमें बादल घिरे हुए थे और बिजली चमक रही थी।

गोपी...श्री   वह वनश्री गोपियों के यौवन को मोहने वाली थी।

(७६)

सुख की वंशी   प्रकृति के मोहक स्वर।

रत्नधर   रत्नावली के पति, रत्न को धारण करने वाले।

रमाके पुर   लक्ष्मी, अपनी स्त्री, के गाँव।

कुछ . कान-कान   कुछ लोगों ने कानाफूसी की कि इतनी जल्दी कैसे आगए।

सुन . रतन की—इतनी जल्दी आना तुलसीदास का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम सूचित करता है।

(७७)

जल...अंग भाभी के व्यंग्य से रत्नावली के अंगों में आग लग गई।

चमकी.. तरल उसके चंचल नेत्रों में अग्नि जल उठी।

तापक्षर आंतरिक ताप से पीड़ित।

रह गई . वरमाला मुरझाये दलों की खुशबू वाली वरमाला के समान रत्नावली रह गई।

(७८)

बोली पुरुषोत्तम—मन में असमर्थ होकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम का स्मरण किया।

लाज . नारी का नारी के लाज के भूषण की रक्षा करो।

अक्लम न थकने वाले।

खींचता चोर तुलसीदास के मन में कौन चोर पैठा हुआ उसके वस्त्र को खींच रहा है (मोह का चोर दु शासन है रत्नावली द्रौपदी है जिसका चीर खींचा जा रहा है)।

खुलता . साड़ी का हे नाथ, पुर की लज्जा रूपिणी साड़ी का अंचल खुल रहा है।

(७९)

कुछ काल क्षय—आँधी उठने के पहले जो क्षणिक निस्तब्धता रहती है, वही इस समय उस घर में व्यापी थी।

(८०)

लौटे कक्ष-शयन अपने अपने कमरों में सोने वाले लौटे।

प्रिय . चयनोत्पल प्रियाओं के नयन प्रिय के नयनों से बँधे स्नेह चयन करते हैं।

पलकों . सुहाग   सुंदरियों के नेत्र खुले हुए हैं और उनसे स्नेह का राग निकल रहा है। प्रथम सुहाग का सुनहला स्नेह उन्हें सुंदर बनाये हैं।

राग   स्वप्नोत्पल   उन आँखों में स्वप्नों के कमल स्नेह के रँग में रँगे हुए खिले हैं।

(८१)

कवि   स्थिर   कवि के मन में जो सौंदर्य का भाव छलक रहा था, वह रत्नावली का स्थायी भाव न था, अतः उसके सौंदर्य से उत्पन्न भाव भी स्थिर न था।

बहती   धारा वह—रत्नावली के भीतर जैसे उल्टा रक्त प्रवाह हो रहा था। प्रियतम को देख पहले की भाँति उसके भीतर मोह न उमड़ रहा था।

लख   द्वारा वह   प्रिय का पूर्णचन्द्र-सा मुख देख कर उसके सिंधु-से हृदय में जो ज्वार उठा वह जलबिंदुओं से सिंचित, विपरीत दिशा में बह रहा था। पति की तरह वह भी मोह में डूबी न थी, अतः वह स्नेह जो अभी तक तुलसीदास के प्रति था अब दूसरी ओर को बह रहा था।

(८२)

मारुत-प्रेरित   हवा से उड़ाई हुई।

घन-नीलालका   बादलों के समान काले केश वाली।

दामिनीजित   बिजली को जीतने वाली, उससे भी सुंदर। (रत्नावली की तुलना पर्वत के समीप आई कादंबिनी से की गई है)।

उन्मुक्त . समुच्च   कादंबिनी को देख कर कवि का मयूरमन अपने सारे पंख फैला कर नाच उठा।

वह जीवन की वह वह यह न समझा कि वह नारी का रूप धोखा भर था।

(८३)

शफरी-अलकें मछली के समान लटें

निष्पात . पलकें कमल-से नेत्रों की पलकों ने गिरना बंद कर दिया है।

भावातुर उपशामिता भावों से आंदोलित हृदय की लहरें शांत हो गई थीं।

निःसंबल बिना किसी सहारे के।

ध्यान-मग्न सत्य के ध्यान में लीन।

जागी . लग्न वह रूप को त्याग, रूपहीन सत्य से संबन्धित, योगिनी के समान जागी।

वह . निरुपमिता निरुपम सौंदर्य वाली प्रिय का मोह त्याग, वह कृश देह वाली खड़ी थी।

(८४)

स्वर्गीयाभा स्वर्गिक प्रकाश।

स्वरित मुखर हुई। बोली।

स्वर में ज्यों बोली अपने शब्दों में जीवन भर कर बोली।

अचपल . चपला वह ऐसे बोली जैसे बिजली चमकी हो, और वह बिजली की चमक स्थिर थी।

बलकी . अबला कहलाती अबला है, परंतु है वह बल की महिमा, विश्व के बल का प्रतीक नारी।

जागी डोली जैसे जलधर लक्ष्मी जागी हो अथवा सरस्वती हो चंचल हो उठी हो।

(८५)

अनाहूत बिना बुलाये ।

पूत पवित्र ।

कैसी...आए जीवन में सुंदर शास्त्रादि की ऊँची शिक्षा पाकर नारी के चरणों पर जीवन निछावर करने के लिये तुलसीदास आये, शिक्षा का यह परिणाम उसे अच्छा न लगा ।

(८६)

संस्कार मुक्ति के इच्छुक का पुराना संस्कार ।

काम पत्नी के प्रति मोह ।

देखा . वह नारी न रह कर, रत्नावली अग्नि की प्रतिमा जान पड़ी ।

प्रथम भान—पहला मोह ।

जड़िमा माया जनित अज्ञान ।

(८७)

तुलसीदास ने पत्नी को सरस्वती के रूप में देखा ; मोह की भावनाएँ बदल जाने पर नारी दिव्य-रूप में दिखाई दी ।

नील-वसना नीले वस्त्र पहने ।

सृष्टि-रसना सृष्टि की जिह्वा ।

जीवन . नि.श्वसना जीवन की पवित्र वायु देने वाली ।

वरदात्री वर देने वाली ।

वीणा . स्वर अपने आप जैसे सरस्वती की वीणा बज रही हो, ऐसा रत्नावली का स्वर था ।

फूटी ..निर्झर अमृत मे अक्षर का शीतल निर्झर जैसे फूटा हो।

वह...श्री शारदा के चरणों के लिए विश्व हंस के समान है : जिसपर उनके चरणों की कांति है।

(८८)

दृष्टि देखा सरस्वती के दर्शन से एक बार फिर तुलसीदास के मन की उड़ान शुरू हुई।

घूमायमान...ताराहर- समस्त शून्य घूमते हुए धुएँ के समुद्र-सा लगता था जिसमें चंद्र और तारे डूब-से रहे थे।

सूझता . देखा उस शून्य मे क्या ऊपर है, क्या नीचे, कुछ न सूझता था सभी सीमाएँ मिटती-सी जान पड़ती हैं।

(८९)

तारा—वही रत्नावली वाली तारिका।

द्युति विलीन उसमें शून्य की नीलिमा विलीन हो रही थी।

हो गई अब वह तारिका बदल कर सरस्वती हो गई जिनका अब कोई रूप न था। वह तारिका तुलसीदास के नवीन दृष्टि कोण के कारण रत्नावली में परिवर्तित न हुई।

आभा . मंद उस तारिका की, सरस्वती का प्रकाश भी क्रमशः मंद हो गया।

निस्तब्ध रुद्ध आकाश गतिहीन रुद्ध सा निस्पन्द था शून्य की सभी क्रियाएँ बंद थी।

आनंद . गत इस आनंद की दशा तक पहुँचने ने जीवन के द्वंद्व, बंधन आदि सब मिट गए।

(९०)

थे अर्धोन्मीलित ज्ञान के नेत्र खुले हुए थे, यद्यपि देखने को आँखे बंद थीं।

कलि. स्थित कलि के भीतर जैसे सुरभि रहती है, वैसे ही तुलसीदास अपने ही चित में स्थित थे।

अपनी . प्राणाशय तुलसीदास की सम्पूर्ण प्राणशक्ति उनकी असीमता मे स्थित है एक जगह होते हुए भी वह अपनी असीमता जान गए हैं।

जिस ..बंद जिस सौंदर्य मे कवि ढँका था।

वह मद उस सौंदर्य का उसमें विकास हुआ।

भारती ..निष्प्रश्रय सुगंध और छंद जैसे फूल और गीत मे विकसित होते हैं उसी प्रकार सरस्वती का उनमें विकास हुआ।

(९१)

जब ..बोध जब देह का ज्ञान हुआ।

शोध खोज।

रह . प्रतिकूला उनकी गति इस समय बाधा-विरोधहीन थी।

खोलती ..निःशूला गंध की धारा जैसे मुँदे दलों को खोलती बह चलती है, वैसे ही तुलसीदास की चेतना का निर्बाध प्रवाह था।

(९२)

लहरें चेतना की लहरें।

जागे...शब्दोच्छल शब्दो के रूप में छलकते आकुल भाव जागे।

गूँजा ..पर्वततल तुलसीदास की जागृति का प्रभाव विश्व पर पड़ा, समस्त प्रकृति मे भी जैसे नव जीवन आ गया।

सूना.. दूना ऋषियों का त्रस्त हृदय कवि के स्वर को प्रसन्न होकर सुनने लगा।

असुर.. निश्चल ऋषियों का मन आसुरी भावों से भस्म होकर निर्जीव हो चुका था।

(१३)

तुलसीदास ने जो सोचा, उसका उल्लेख किया जाता है।

जागो...अघ रात अज्ञान की रात बीतने पर ज्ञान का प्रभात हुआ।

झरता...पूर्वाचल पूर्व का पर्वत ज्योति का झरना झर रहा है (उदयगिरि पर ज्ञान-सूर्य उदित हुआ)।

बाँधो.. जीवन अंधकार को जीतने वाले तपस्वियो, इन चेतना की किरणों का संग्रह करो।

आती.. महिमावल भारत के ज्ञान-गौरव का अब प्रसार आरंभ हुआ।

(१४)

होगा . निशिवासर जड़ और चेतन का भयानक संग्राम फिर शुरू होगा।

कवि . भर कवि का प्रत्येक जड़-रूप से युद्ध होगा और यह युद्ध कृत्रिम जीवन का नाश कर मानव को नवजीवन देने वाला होगा।

भारत कौशल—एक ओर सरस्वती हैं दूसरी ओर मायावी जीवन के सब कौशल हैं।

जय . मायाकर एक ओर ईश्वर और जय हैं दूसरी ओर माया करने वाले दैत्य हैं (दो संस्कृतियों के संघर्ष को ही जैसे तुलसीदास ने रामायण मे राम-रावण के युद्ध में वर्णित किया हो)।

(१५)

हो रहे.. जोड़ेगी जीवन के जो छोटे-छोटे दल छिन्न होकर बिखरे हुए हैं, उन्हें अविछिन्न कवि की नवीन कला जोड़ेगी ।

रवि-कर.. मोड़ेगी सूर्य जैसे बिंदु बिंदु जल संचित कर बादलों से बरसाता है और विश्व के वक्ष को नव जीवन से लहरा देता है, वैसे ही कवि की कला लोभ-मोह आदि से ग्रस्त मानवों को ज्ञान की ओर प्रेरित करेगी ।

(१६)

देश . छविधर देशकाल की बाधाओं से पीड़ित इस छवि की चेतना जागी है ; उसे अपनी असीम सुन्दरता का बोध हुआ है ।

निश्चेतन...सोएँगी राग, द्वेष, छल कपट आदि की जो रागिनियाँ बहती थीं और समाज को निर्जीव किए थीं, वे अब सोएँगी ।

(१७)

जग के . जागो संसार की वीणा अज्ञान के अंधकार में डूबी थी ; उस पर ज्ञान का प्रकाश पड़ा । अब उसमें से नए वसंत के स्वर निकलेंगे ।

इस...माँगो इस वीणा के स्वरों से अपने प्राणों में नवीन शक्ति संचरित कर लो ।

(१८)

क्या . सुना कहाँ क्या हुआ, कवि ने कुछ न देखा , अपनी बातें उसने मन में ही सोच लीं ।

साधना.. प्राणों की इस समय केवल प्राणों में साधना का भाव जाग्रत था ।

देखा.. तानों की सामने रत्नावली को आँखों में जल भरे देखा। वह जैसे विश्व-संगीत की प्रतिमा निरुपम सौंदर्यवाली थी।

(९९)

जगमग . माप चेतन जीवन की अंतिम बात जो कवि ने अपनी पत्नी से कही।

लेता मैं.. वहने का जो वर जीवन भर वहन करने का है, लेता हूँ।

(१००)

उर में . सुवर रत्नावली की सुंदर मूर्ति।

जागी...महिमावर उसे विश्व को आश्रय देने वाली गौरवमयी मूर्ति के रूप में देखा।

संकुचित पटल सरस्वती जो कमलों को खोल रही थी।

बदली . सुखजल लक्ष्मीरूप में जल पर तिरती दिखाई दी।

प्राची . रेखा और उसी मूर्ति का प्रकाश जैसे सूर्य की सुंदर रेखा के रूप में पूर्व में फूटा हो।